आज्ञापालन

के. पी. मुहम्मदकुट्टी, P. U. C.

कल बड़े सबेरे मैं अपने सुन्दरोद्यान में घूम रहा था। सूरज मेरा सुन्दर उद्यान देखने के लिए अपना सिर धीरे-धीरे ऊँचा उठाता था। जब सूरज की तेज़ किरणें गुलाबों पर पड़ीं तो उन के कोमल वदनों में लज्जा का रंग दिखाई पड़ा। उन में पड़े हुए हिम-कण हीरे के समान चमकने लगे। कुसुमों का सौरभ्य धर कर मन्द पवन चल रहा था। उस हवा में मेरे बाल (उस में तेल जरा भी नहीं था) नृत्य-कला सीखने लगे। जाड़े का दिन था। फिर भी मैं ने नहाने का निश्चय किया। क्यों कि नहाना तन्दुरस्ती के लिए अच्छा है। इस लिए मैं ने उस छोटे तालाब में स्नान किया। हायरे, पानी बहुत ठंडा था! मेरे दाँत किडकिडाते रहे। फिर भी मन में सुख की हवा चल रही थी। मैं ने समझा कि आग के पास जाना आवश्यक है। इस लिए मैं आग के पास जा कर बैठ गया। तुरन्त मेरी दृष्टि एक हरे विज्ञापन-पत्र पर पड़ी। उस में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था — "मधुरै वीरन्"। वह सिनेमा का एक नोटीस था।

मैं ने निश्चय किया कि वह चित्र देखने के लिए आज ही तिरूर जाऊँगा। मगर.....मेरे पिताजी सिनेमा के विरोधी हैं। मुझे मालूम हो गया कि वे मुझे जाने नहीं देंगे। यद्यपि बात यह थी, पर मेरा निश्चय अटल था। मैं सिनेमा देखने जाऊँगा।

मैं नये कपड़े पहनने के लिए अपने कमरे में गया। तब मेरे पिताजी वहाँ थे। मैं ने डरते हुए उन से कहा कि पिताजी, आज मुझे तिरूर जाना चाहिए। पिताजी ने पूछा कि किस के लिए? मैं क्या कहता? मैं चुप रह गया। मुझे मालूम हुआ कि मेरे पिताजी मुझे जाने नहीं देंगे। पिताजी ने कहा कि देखो, मैं तुझे तिरूर जाने नहीं दूँगा। मुझे मालूम हो गया है कि तुम सिनेमा देखने के लिए तिरूर जाना चाहते हो। इस लिए मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम तिरूर मत जाओ।

मैं दुविधा में पड़ा। मैं उस कमरे से बाहर गया। मेरा दिमाग चकराने लगा। आखिर मैं ने निश्चय किया कि पिताजी के आदेश के बिना मैं तिरूर जाऊँगा। मेरा निश्चय दृढ़ था। बस में जाने के लिए मैं बाजार गया। मेरे पिताजी ने मुझे नहीं देखा। इस लिए मैं बच गया। मेरे पास दस रुपयें थे।

बस तिरूर रेल्वे स्टेषन के पास पहुँचा। मैं उस से बाहर निकला। मैं ने वहाँ कई तरह के लोगों को देखा। वे सब स्टेषन पर चल रहे थे। वे सब भिखमँगे थे। कुछ लोगों के पैर नहीं थे, कुछ लोगों के हाथ नहीं थे और कुछ लोगों की आँखें भी नहीं थीं। वह क्या जीवन है? हे खुदा, ऐसे जीवन का उद्देश्य क्या है? वह मेरा पहला अनुभव था। क्यों कि मेरे गाँव में ऐसे लोग नहीं हैं। वे पैसा माँगते थे, झूठीं रोटी मांगते थे और सब कुछ माँगते थे। एक आदमी मेरे पास आ कर चिल्लाने लगा कि "हे बाबू, मुझे एक पैसा दीजिए। आज मुझे कुछ नहीं मिला। मैं भूखा हूँ। इस लिए एक पैसा दीजिए।" उस आदमी का दीन-रोदन मेरे दिल में लगा। मैं एक आना उसे दे कर उस नरक से बच गया।

सिनेमा शुरू होने में कुछ समय बाक़ी था। "रहीम तुम यहाँ कैसे?" एक आदमी ने मुझ से पूछा। मैं ने उस की ओर देखा। तब मालूम हुआ कि वे मेरे पड़ोसी हैं। उन्हों ने मुझे देखा। इसी लिए मैं विपत्ति में पड़ गया। वे घर में जा कर कहेंगे कि रहीम तिरूर में है। इस लिए मैं ने उन के पास जा कर कहा कि अहम्मदजा, मैं एक किताब खरीदने के लिए यहाँ आया हूँ। आप मेरा एक उपकार कीजिए। आप यह बात मेरे घर में मत कहिए। यह सुन कर अहम्मदजी ने कहा कि मैं नहीं कहूँगा। उस की ज़रूरत मुझे क्या है? लेकिन रहीम, यह यात्रा ठीक नहीं है। मुझे गुस्सा आया। मुझे उपदेश देने के लिए यह आदमी कौन है? लेकिन मैं ने अपना गुस्सा बाहर नहीं प्रकट किया। क्यों कि मेरी रक्षा उन पर है। इस लिए मैं ने कुछ नहीं कहा।

टिकट देने का समय आया। 'मधुरै वीरन' को देखने की मेरी आशा भावना के आसमान में मंडरा रही थी। वह आशा सफल हो जाने के लिए अधिक समय नहीं था। मैं ने पैसा कुर्ते की 'पोकट' में रखा और टिकट खरीदने के लिए 'लाइन में बड़े मुश्किल से घुस गया और आगे बढ़ने लगा। आखिर मैं टिकट देने वाले के पास पहुँचा। तब मैं ने अपनी पोकट में हांथ डाला। तब मैं ने क्या देखा! मेरी पोकट में एक भी पैसा नहीं है! सिर मेरा चक्कर खाने लगा। सोचने लगा — 'अब मैं क्या करूँ? मेरे पास पैसा

बचपन की स्मृतियों में!!

सरस्वती के. पी.

"ओ बसन्ती, पवन पागल
ना जारे, ना जारे ! रुक कोई....."

मोहन एक खास ढंग से गा रहा था। उस का भाव ऐसा था कि वह ग्रामफोण रेकार्ड का अनुकरण कर रहा है। उस की प्रतिध्वनि मेरे कानों में भी आ लगी। मैं कमरे में लेटी-लेटी एक कहानी पढ़ रही थी। मैं ध्यान से गीत सुनने लगी। वे बच्चे आज कोई त्योहार मनाते होंगे। ओ ! आज इतवार की छुट्टी भी है !

"चेच्ची ! चेच्ची..... ! यह चेच्ची कहाँ गयी है ?" छोटी बहिन शोभा की आवाज़ थी। वह मेरी खोज करने लगी थी। मुझे भय हुआ कि अब वह मुझे यह कथा खतम करने न देगी। न जाने किस बात को ले कर आ रही है ?

"अम्मा, चेच्ची कहाँ है ? जरा कहो।" —शोभा माँ से कह रही है।

"मुझे नहीं मालूम। तू जा कर देख ले री। मुझे तंग मत कर। मेरी साड़ी मत खींच।"

वहाँ भी शोभा को सफलता न मिली।

"हम ऊपर जा कर देखें। शायद लता चेच्ची वहाँ होगी।" पड़ोस वाली सुमा शोभा को तसल्ली दे रही है। शोभा की प्रिय सखी है वह, और मेरी प्यारी जया की छोटी बहन !

"ठीक है, मैं वहाँ देखना भूल गयी। हम अभी जावें।"—शोभा की जान में जान आयी।

फिर सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आवाज़ सुनायी पड़ी। मैं ने सोचा कि अब इन की आँखों से बचना मुश्किल है। मैं ने किताब बंद करके सोने के बहाने आँखें मूँद लीं।

सुमा कमरे में आयी और मुझे निद्रा में लीन देख कर चुपचाप चली गयी। "चेच्ची तो सो रही है, शोभा। अब हम क्या करें ?" —उस ने शोभा से शिकायत की।

"सो रही है ? तो मैं अभी आ कर निद्रा भंग कर दूँगी। ऐसे सुदिन में क्या सो रही है ?"

—कहती हुई शोभा कमरे में आयी। साथ बाकी लोग भी। "उठो चेच्चा, नहीं तो मैं अम्मा से कह दूँगी कि तुम पढ़ने का बहाना करके सो रही हो।" वह मुझे उलट-पलट करने लगी। मैं मन में मुस्कुरायी। इन नन्हें बच्चों के सामने कपट करना व्यर्थ है। अंत में आँखें खोल कर उठ बैठी। पूछा—"तुम क्यों आये ?"

"यह चेच्ची कितनी अच्छी है !" सभी मेरी खुशामद करने लगे।

"तुम्हें मालूम है ? हम क्यों आये ?" शोभा ने प्रश्न किया। "आज मेरी पुत्री ओमना का ब्याह है। तुम्हें बुलावा देने आये हैं।"

ओमना उस की प्यारी गुड़िया है— उस की आँखों का तारा।

"दुल्हा कौन है ?" मैं ने पूछा।

"मेरा पुत्र बाबू।" सुमा के गर्व के बारे में कहना ही क्या ! आज वह सास बनने वाली है न ?

"हम ने आसपास के सभी लोगों को बुलवा दिया है। आओ चेच्ची। आ कर ओमना का शृंगार करना। मुझे वहाँ हज़ारों काम हैं। जल्दी करो, चेच्ची।" शोभा मेरा आँचल पकड़ कर खींचने लगी।

"तुम सब जाओ। मैं अभी आयी।"

"भूलना मत।" कहते हुए सब सीढ़ियाँ उतर कर चले गये।

क्षण-भर मैं वही बैठी रही। फिर उठ कर खिड़की से नीचे झांकने लगी। शोभा और सहेलियाँ कई प्रकार के कामों में जुटी हुई हैं। कोई दावत की तैयारी कर रहे हैं। कोई रंग-बिरंगे हारों से चारों ओर सजा रहे हैं। ऐसा लगता है कि गाने का सभी उत्तरदायित्व मेरे भाई मोहन के कंधों पर है। आनन्द से उछलने वाले उन अबोध बच्चों को देख कर उड़ने वाली उन तितलियों को देख कर, खुशी की हवा में झूमने वाली उन सुन्दर कलियों को देख कर मेरा मन प्रफुल्लित हो गया। साथ ही आँखें दुख से भर गयी थी !

अपने बचपन के बड़े सुन्दर दृश्य मेरे मन के सामने एक चल-चित्र की भाँति आने-जाने लगे। कितना सुन्दर था वह जमाना ? उस जीवन में कितना सुख था, कितनी संतृप्ति थी ! बचपन के उस सुन्दर सागर में दुख की लहरें बिरले ही उठती थीं। सभी जगह आनन्द ! सर्वत्र उत्साह ! कालचक्र की गति में उस सुन्दर, अबोध बचपन से मुझे भी बिदा लेना पड़ा। मेरे उस समय के मित्र आज कहाँ हैं। सभी के मार्ग भिन्न-भिन्न थे। सब के सब अपने-अपने रास्ते से चल निकले। मेरी प्यारी जया भी मुझ से बिछुड़ गयी। हम एक दूसरे से कितना दिल-खोल कर

व्यवहार करती थी। मगर क्या फायदा ? विधि के सामने हमें भी सिर झुकाना पड़ा। आज केवल एक मैं बाकी रह गयी जो पुराना स्मृतियों की गाँठ रह-रह कर खोला करती हूँ। मेरी मदद के लिए वे स्मृतियाँ ही बाकी रह गयी हैं।

मगर बचपन में ऐसा कोई दुख न था। मैं स्वतंत्रता से चारों ओर विहार कर सकती थी। मगर आज……! आज कोई बन्धन न रहने पर भी कई बंधन हैं ! उस सुन्दर बचपन के संसार में वापस जा सकूँ तो कितना अच्छा हो !

पर इन लड़कों को देखो। बड़े होने के लिए उन का जी मचलता है। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वे माता-पिता का अभिनय करते हैं, ब्याह-शादी मनाते हैं ! उन को इन "बड़े लोगों" के दुख के बारे में क्या मालूम !

मैं ने मन से उन्हें आशीर्वाद दिया—"बच्चों, तुम कभी बड़े मत बनो। इसी प्रकार आनन्दमय जीवन बिताते रहो।" पर मेरी यह इच्छा कब तक सफल होने वाली है ! यह जीवन सुख-दुखों की एक आँख-मिचौनी ही है। प्रकृति का रथ आगे बढ़ेगा ही।

"यह चेच्ची अब भी नहीं आयी है ? कैसी चेच्ची है ! शादी का मुहूर्त हो रहा है। सुमा, तुम जा कर ज़रा चेच्ची को बुलाओ। नहीं तो, मैं ही जाऊँगी। तुम ये पत्ते साफ करो। ओमना का शृंगार भी नहीं कर पायी। क्या करूँ ? चेच्ची……। चेच्ची…… !"

—शोभा की आवाज़ ने मुझे अपनी चिन्ताओं से जगाया। मैं स्मृतियों के संसार से वास्तविक दुनिया में आयी। अब देरी करना उचित नहीं। आइने में देखने पर मालूम हुआ गाल आँसू से भीग गये हैं। मुँह साफ करके मैं नीचे उतर आयी, शादी में शामिल होने के लिए, उन की खुशी में भाग लेने योग्य न रहने पर भी।

तब भी मोहन का ग्रामफोण गा रहा था, "वह सुन्दर सपना बीत गया……"

"ठीक है"—मेरा मन भी गुनगुनाता रहा।

हम हिन्दुस्थानी

उदयभानु, I B. Sc.

वे मालिक या गुरु नहीं थे। वे सिर्फ इनसान के दास थे। भारत की दुर्शशा देख कर वे निःशब्द रोए थे। उन्हों ने निरालम्ब गरीब और असहायों में भगवान को देखा था। भारत की खोयी हुई इज्जत को एक बार फिर लौटा लाने के लिए प्रयत्न करने वाले महात्माओं में उन का स्थान बहुत ऊँचा हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी अंग्रेज़ी के बड़े पंडित थे। अपनी शिक्षा से उन्हें दुनिया का हाल मालूम नहीं हुआ था। ईश्वर की खोज में उन्हों ने देश–देशान्तरों में यात्रा की। आखिर उन को सत्य का ज्ञान हुआ—दक्षिणेश्वर के योगिवर्य श्रीरामकृष्ण ने उन पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। नरेन्द्र ने उन को अपने गुरु बनाया। श्री रामकृष्ण के निधन के बाद उन्हों ने अपने आप को भारत के दलित लोगों के सुधार के लिए आत्मसमर्पण किया।

भारत के सुशोभन भूतकाल के प्रति उन को अभिमान था, किन्तु वर्तमान काल की गिरी दशा पर उन को खेद था। गीता और उपनिषदों में उन्हों ने भारत की खोई हुई संस्कृति को देखा। उन्हो ने लोगों को समझाया कि वे ग्रन्थ किसी एक जाति या धर्म के नहीं, परन्तु सभी भारत–वासियों का उन पर समान अधिकार होता हैं। उन्हों ने समझा कि 'हिन्दु' नाम किसी एक धर्म को प्रतिनिधान नहीं करता, किन्तु वह समूचे भारतवासियों का एक नाम है। उन्हों ने भारत के चिरपुरातन धर्म का यह तत्व ऊँचा कर दिया कि—"किसी के विश्वास को हिलाने का प्रयत्न नहीं करना।"

उन्हों ने अपने धर्म का प्रचरण करने का प्रयत्न नहीं किया—उन्हों ने उस को निषिद्ध माना। उन्हों ने पाश्चात्यों को भारतीय महत्व और संस्कृति को समझाने की कोशिश की। वे भारत के जगे वीर्य के रूप में शिकागो गये थे—किसी एक धर्म के प्रतिनिधि के रूप में नहीं।

किसी एक जगह बैठ कर भजन करने के विषय में उन को विश्वास नहीं था। उन्हों ने बलाढ्य माँसपेशी को अधिक प्रधान माना था। उन्हों ने प्रेम और त्याग करने का उपदेश दिया। उन्हों ने पूछा था—"तुम अपनी आँखों के सामने दरिद्रनारायण को मरते छोड़ कर किस भगवान की पूजा करते हो?" उन्हों ने गरीब और बीमार लोगों की शुश्रूषा करना ही ईश्वर पूजा समझा था। भारत के करोड़ों गरीबों को आश्वास मिले बिना हमारी स्वाधीनता पूरी नहीं होगी। इसीलिए उन्हों ने जाति–पाँति को दूर करने की कोशिश की थी।

उन्हों ने लोगों को समझाया कि—"दुनिया में कोई पापी नहीं है; लोगों को पापी कहते हुए हम केवल गलती करते हैं।"

उन्हों ने विषय सुख को छोड़ा क्योंकि अपने प्रयत्न में बाधा डालने के लिए इस दुनिया में कोई वस्तु नहीं रहे। उन्हों ने भारत के समुद्धार का उपदेश देते हुए सारे भारत में पर्यटन किया। वे भारत की अस्वाधीनता देख कर बहुत दुःखी थे। उन्हों ने पहले पहल अपने राज्यवासियों में एकता बढ़ाने की कोशिश की थी। अंग्रेज़ी बोलते हुए सिगरेट पीते हुए, नये फैशन के यूरोपीय वेशभूषा पहनते हुए अपनी संस्कृति को भूलने वाले युवकों के प्रति उन की असीम सहानुभूति थी।

उन के सर्वप्रधान उद्यम श्रीरामकृष्ण मिशन का स्थापन था। आश्रमवासी लोग किसी धर्म के प्रचरण के लिए कुछ नहीं करतें हैं। अपने धार्मिक विश्वास को छोड़ बिना अपनी मातृभूमि की उन्नति के लिए प्रयत्न करने का आह्वान ही उन्हों ने दिया था। सभी भारतीय को—वे बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाई कोई भी हों—एक सूत पर मिलाना और सभी के मुँह से "हम हिन्दुस्थानी" कहलाना ही उन का परम ध्येय था। उसी में उन की सफलता थी।

हज़रत मुहम्मद एक दृष्टि में

आर. डी. विक्टोरिया

हज़रत मुहम्मद के जन्म के पहले अरब की स्थिति

हज़रत मुहम्मद के पहले अरब की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति बड़ी भयंकर थी। उस समय वहाँ के मानव, मानव का खून पीते थे और आपस में झगड़ा और पाशविक व्यवहार करते थे।

सारा देश सैकड़ों कबीलों में बंटा हुआ था। हर कबीले का एक-एक कुलपति होता था। इन कबीलों में हमेशा किसी न किसी बात पर झगड़ा होता रहता था। कबीले वाले दूसरे कबीले वालों को गुलाम बना रखने की कोशिश करते थे। और ऐसे बनाए गुलामों के साथ जानवरों का-सा व्यवहार करते थे। कभी-कभी मालिक लोग अपनी गुलाम स्त्रियों से वेश्यावृत्ति करा कर धन कमाते थे। लड़कियों से वे नफरत करते थे। बेटियों का बात होना उन के लिए बेइज्ज़ती की बात थी। इसलिए लड़कियों को जिन्दा दफन कर देते थे। पैतृक संपत्तियों में स्त्रियों को कोई अधिकार न था। एक पुरुष को कई स्त्रियाँ और एक स्त्री के कई पति थे। दोनों प्रथाएँ उन दिनों में वहाँ चलती थी। कुछ लोग, कमज़ोरों और व्यापारियों पर लूट मार करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। साल में चार महीनों तक वे मक्का में तीर्थाटन करते थे।

मुहम्मद साहब के जन्म के पहले अरब की धार्मिक व्यवस्था भी बहुत घृणित थी। तीन धर्म वहाँ प्रचलित थे—प्राचीन अरब धर्म, ईसाई धर्म और यहूदी धर्म। वे उस समय बहुपरश्त और बुतपरस्त थे। हर कबीलेवाले अपना एक अलग देवता रखते थे। देवताओं को खुश करने के लिए पशुबली, नरबली वगैरह करते थे।

हज़रत मुहम्मद का प्रारंभिक जीवन

कुरैश अरब का एक खास काबिला था। कुरैश का सरदार हाशीम, उन का बेटा मुतलिब्ब, मुतलिब्ब का बेटा अब्दुल मुतलिब, इन का बेटा अब्दुल्ला और अब्दुल्ला के बेटे हज़रत मुहम्मद थे। माता अमीना मुहम्मद साहिब का पालन-पोसन न कर सकने के कारण हलीमा ने उन को पाला-पोसा। छठे साल की उम्र में हलीमा भी मर गयी। पिता तो पहले मर चुके थे। इसलिए मुहम्मद माँ-बाप का लालन-सुख भोग न सके।

लड़कपन में ही मुहम्मद साहब को टकांत और चिन्तित रहने की आदत थी। लोगों के अत्याचार और बरबादी और नैतिक धार्मिक पतन देख कर उन्हें बहुत दुख हुआ। वे २५ वर्ष की उम्र तक लोगों की दुर्दशाओं का अनुभव करते रहे। इतने में उन का विवाह मक्के की एक धनाढ्य तिज़ारती विधवा के साथ हुआ। मुहम्मद साहब ने अपना जीवन लोगों की दुर्दशाओं का अनुभव किये बिना लोगों को सुधारने का मार्ग ढूँढ़ने और परोपकार करने में बिता दिया।

हज़रत मुहम्मद को ईश्वर का इलहाम कैसे हासिल हुआ

अपने देश की दुर्दशा पर मुहम्मद साहब हमेशा चिंतित रहे। उन का विश्वास था कठिन तकलीफ उठाने के बाद प्रकाश मिलेगा। कठिन चिन्तन के फल से उन्हों ने निर्णय किया कि भिन्न-भिन्न कबीलों के भिन्न-भिन्न भेद-भाव और ईश्वर विश्वास ही सभी पतन का कारण है, इसलिए अखण्ड परमेश्वर की पूजा द्वारा ही उन सब को पूरी तरह मिला कर एक कौम बना देने का इरादा कर लिया।

सब कबीलों को एक संप्रदाय में बांध कर और सब का विश्वास एकमात्र देवता पर लगाने के लिए वर्षों तक वे हीरा पहाड़ में एकांत सेवन, लंबे-लंबे उपवास और रतजगी चिंता में लगे रहे। आखिर उन की घोर तपस्या के बाद उन्हें अपने अंदर से ज्ञात हो गया। "ऐलान कर, अपने उस सबेक नाम पर, जिस ने सृष्टि की, ऐलान कर सब कृपालू है, उन्हों ने मनुष्य को वे बातें सिखायी जो वह नहीं जानता था। अब तक उन के दिल के तसल्ली मिली।

इसी को उन्हों ने ईश्वर का पैगाम माना और उस का प्रचार करने लगे। कड़ी-कड़ी कठिनाइयाँ झेलने के बाद उन्हों ने अपने सिद्धांत लोगों को समझाये और उन सिद्धान्त मानने वालों को इस्लाम के नाम पर सुधार किया।

मुहम्मद साहब मक्का छोड़ कर मदीना क्यों चले गये? जब से हज़रत मुहम्मद को अपनी घोर तपस्या के फल से ईश्वर का पैगाम प्राप्त हुआ था तब से लोगों में प्रचार करने लगे। अनेक बुतों की उपासना छोड़ कर एक निराकार ईश्वर की उपासना करना, ऊँच-नीच और कबीलों के भेद-भाव को तोड़ कर मनुष्यमात्र को भाई-भाई समझना और बुरे रस्म-रिवाज़ों को छोड़ कर नेक कामों में लग जाना आदि

सिद्धांतों पर मुहम्मद के चलाये इस्लाम धर्म पर सिर्फ तीन वर्ष के अथक परिश्रम से बीस अदमियों का ही विश्वास जम गया। लोग मुहम्मद साहब की हँसी उड़ाने लगे; इतना ही नहीं तरह–तरह की तकलीफें देने लगे। मुहम्मद साहब और उन के अनुयायी अपने धर्म पर डटे रहे और अपने–अपने दुश्मनों का सामना करने गये। आखिर दुश्मन करेशों ने मुहम्मद साहब की हत्या करने का निश्चय किया। मुहम्मद की जान बचाने का और कोई चारा न मिलने के कारण उन के चाचा अबदाली की सलाह से उन के परिवार और अनुयायियों को साथ ले कर दूर एक घाटी में तीन वर्ष तक छिपे रहे। इतने में कुरेश का एक वीरबली हज़रत उमर और ईसाई सम्राट ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। इस तरह अपने काम व उद्देश्य में एक नया उत्साह मिलते ही उन की पत्नी का देहान्त हो गया। धीरे–धीरे सारे यसरेब वालों ने मुहम्मद साहब का धर्म स्वीकार किया। और कुरेश दुश्मनों से उन्हों ने मुहम्मद साहब को बचा लिया। यही यसरेब फिर मदीना नाम से मशहूर हो गया।

मदीना पहुँचने के बाद मुहम्मद साहब को अपने नये धर्म इस्लाम का प्रचार करने में जो सफलता मिली

मदीना पहुँचने के बाद मुहम्मद साहब के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। वहाँ के दो मुख्य काबिलो में बीस वर्षों से चलती हुई खाना जंगियाँ बन्द हो गयी। दोनों कबीलों के लोग इस्लाम बन गये। उस का परिणाम यह हुआ कि शासन की बागडोर भीं मुहम्मद साहब के हाथों में सौंप दी गयी।

मदीने वालों में समता और चैन कायम करने के बाद मुहम्मद साहब ने मदीने के बाहर के ईसाई और यहूदी कबीलों पर अपने धर्म का प्रचार करने के लिए कुछ लायक शिष्यों को भेजा। उन्हों ने इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बदले मदीने पर चढ़ाई की। घमासान लड़ाई हुई। लेकिन कुरेशों की हार हुई। कुरेश पूर्व तैयारियों के साथ दो बार और भी चढ़ायी की और उस की जीत हुई। आखिर मुसलमान और कुरेशों में संधी हुई। मुहम्मद साहब अपने दो हज़ार अनुयायियों के साथ मक्का वापस आये। मक्का के सैकड़ों बुतों को तुड़वा दिया। मक्के के लोगों ने अपनी इच्छा से इस्लाम को स्वीकार किया। सिर्फ रोमनों ने इस्लाम का विरोध किया और उन का मुकाबला का उन को परास्त किया।

मुहम्मद साहब की मृत्यु कैसे हुई

मुहम्मद साहब ने अपना धर्म और शासन सारे अरब में स्थापित करके राष्ट्र को अलग-अलग प्रान्तों में बांट कर उन में मुसलमान शासकों को नियुक्त किया। लेकिन फिर उन का स्वास्थ्य धीरे–धीरे गिरने लगा। इतने में खैबर के एक यहूदी ने उन्हें भोजन के साथ विष पिला दिया। तब से तो वे बिलकुल बीमार हो गये। आखिर उन को एक भयंकर ज्वार चढ़ कर मृत्यु का संदेश लाया। उन्हों ने अपने अंतिम दिनों में जो आदेश दिये थे वे बड़े महत्वपूर्ण और सार्वजनिक थे। उन के महत्वपूर्ण आदेशों में कुछ प्रधान नीचे दिये जाते है।

१. अल्लाह परम कृपालू है। वह सब को क्षमा करता है। और सब पर रहम बरसाता है। २. अल्लाह ने पैतृक संपत्ती में सब को समान हकदार नियत किया है। इसलिए किसी को असीम अधिकार व धन हडप लेना न चाहिए। ३. किसी से बदला लेना खुदा की इच्छा के खिलाफ है। ४. निरपराधियों पर कोई भी जुर्म नहीं लगाया जाए। ५. सूद की प्रथा निषिद्ध है। ६. पति अपनी पत्नियों पर अधिक प्रेम करें और उन के साथ मेहरबानी का सालूक करो। ७. आश्रितों से इज्जत के साथ व्यवहार करे और उन्हें अपना हिस्सा बांट दे।

इस तरह सरल और सादा पावन जीवन बिता कर अपने उज्वल गुणों के कारण मुहम्मद साहब ने अपना असर सारी दुनिया में फैला दिया।

मातृभूमि

शिवप्रसाद

सुनील चिन्तामग्न हो गया। छुट्टी तो कल ही मज़ूर हुई थी। लेकिन आज प्लाट्टून आफिसर का हुक्कुम मिला कि नीफा की तरफ मार्च करो। बिजली की तरह यह हुक्कुम हृदय में घुस गया। क्या किया जाय। उधर जाने पर लौट आने की आशा कम ही थी। मरने का डर नहीं था। लेकिन शोभा और रजनी की बात सोच कर दिल चंचल होने लगा।

पूरी बारक सजा होने से मार्च शुरू होता हैं। सिर्फ पन्त्रह मिनुट का समय बाकी था सुनिल अपनी बन्दूक साफ करने लगा। उस ने अपनी ट्रन्क से एक रूमाल निकाला। उस चीज़ को देखते ही सुनील के दिमाग में चिन्ता तरंग बहने लगा।

फौज में भर्ती होने की कोई आवश्यकता नहीं थी। बाप के मरने से माँ के लालन–पालन में ही बढ़ गया। खान दान की बड़ी इज्जत थी। आस-पास के लोगों से बढ़ कर धनी भी था वह।

शोभा बहुत खूब सूरत और चौदह–पन्द्रह की लड़की थीं। सुनील के मामा तो बहुत प्रतापी और धनवान थे। वे पूना के मुनिसिपल कमिषणर थे। जब वे सुनील के गाँव आये वे अपनी पुत्री शोंभा के साथ सुनील के घर में रहे। सुनील बि. ए. में पढ़ रहा था। प्रथम दर्शन में ही शोभा के साथ उस का प्रेम हो गया। सुनिल भी कम सुन्दर नहीं था। फिर बात तो क्या—बस।

जब यह बात शोभा के पिता को मालूम हुई वे बहुत क्रुद्ध हुए और सुनील की माँ से बिना बोले घर छोड़ कर एक दूसरे अन्य गृह में रहने लगे। जब ये सब बात ग्राम में फैल गयी, सुनील अभिमान से जीना मुश्किल समझा। उस ने अपनी प्रिय माँ से भी बिना कहे घर छोड़ दिया। जाते समय शोभा के दिये हुए एक रुमाल ही उस ने उस की याद के रूप में ले लिया।

बंबई के दादर में गाड़ी पहुँची। वह अपने बन्धुओं से बहुत दूर निकल गया।

कोई–न–कोई नौकरी के लिए उस ने बड़ी कोशिश की। लेकिन उस के लिए सारे दरवाज़े बन्द थे। जो दूध–दही के बिना जी न सकता था, सिर्फ ठंडे पानी से संतोष करने लगा। और उस के लिए जमीन रेश्म की सेज हो गयी। मानव जीवन के सभी दुख उस ने सह लिये।

एक दिन उस ने देखा कि कुछ लोग एक बंगले के सामने इकट्ठे रहते हैं। जा कर पूछने पर मालूम हुआ कि फौज में भर्ती की जा रही है। सुनिल भी उस झुंड में शामिल हुआ और वह भी फाज में एक सिपाही बन गया। विद्या और कुशलता के कारण बहुत जल्दी वह एक जमेदार हो गया। अब माँ को देखने की लालसा हुई। दो–तीन साल बाद उस को अब छुट्टी मिली और वह बन्धु–मित्र को देखने के लिए स्वदेश पहुँचा। उसी समय उस को पता लगा कि उस के मामा जी एक हफ्ते के पहले बीमार हो कर मर गये हैं और शोभा अकेली रहती हैं। शोभा अब तक किसी दूसरी शादी को राज़ी नहीं हुई थी। सुनील ने अपनी माताजी की आज्ञा पा कर शोभा के साथ शादी कर ली। और दूसरे महीने में उस को ड्यूटी पर जाना पड़ा।

एक साल और बीत गया। आज से दो महीने पहले सुनील एक बाप हो गया। उस की बड़ी लालसा हुई कि अपने बेटे—रजनी को देखे। अब तो शोभा हफ्ते में दो–ती चिट्ठयाँ भेजती है और हर एक में उस के न जाने के कारण शिकायत की वर्षा की जाती है। सुनील के मन में रजनी का मुख कमल चित्रित हुआ।

एक लंबी सीटी सुनायी पड़ी। सुनील चिन्ता से जाग उठा। दो मिनट के बाद सभी कंपनी का मार्च शुरू होगा। उस ने जल्दी एक कागज़ लिया और शोभा को एक चिट्ठी लिखने लगा। लेकिन आधे में ही उस को खत खतम करना पड़ा।

जब सुनील का प्लाट्टून सेला पहुँचा तो उसे चीन के मोरटार की वर्षा ने स्वीकार किया। कुछ देर कठोर रण हुआ। सुनील के कई मित्र मारे गये। और चीनीं आगे आने लगे। तब वह अपने बन्कर से

नहीं।' तो कैसे घर वापस लौटूँ? मैं भूखा था। मगर मेरे पास पैसा नहीं था। उसी वक्त मुझे वापस जाना था। क्यों कि मेरी माँ–बाप वेदना के सागर में पड़ें झोंगे।

अब मुझे मालूम हुआ कि मैं ने अपने पिताजी की बात नहीं मानी। यहीं इन सारी विपत्तियों की जड़ थी। यदि मैं ने अपने पिताजी का आज्ञापालन करता तो ऐसी विपत्ति में कैसे पड़ता।

—:०:—

बाहर आया और चीनियों के ऊपर मोरटार बरसाने लगा। लेकिन बहुत देर तक यह काम जारी नहीं कर सका। दो–तीन गोलियाँ उस के शरीर में घुस गयी और कैदी बनने से बचने के लिए वह समीप के एक अगाध गर्त में कूद पड़ा।.....

लड़ाई खतम हो गयी। एक हफ्ते के बाद शोभा को एक टेलग्राम के साथ एक चिट्ठी भी मिली। टेलग्राम पढ़ते ही शोभा बेहोश हो गयी।

दो दिन के बाद जब उस ने चिट्ठी खोली तो वह अपूर्ण थी। वह तो सुनिल का अन्तिम पत्र था। वह इस प्रकार था।

सेला

प्रिये,

मुझे तुम और रजनी से मिलने की बड़ी इच्छा है। लेकिन मेरा समय हो गया। माँ पुकारती है। मैं मातृभूमि की रक्षा करने के लिए जा रहा हूँ। तुम से मेरा एक—केवल एक अनुरोध है मेरे बेटे रजनी को भी फौज.....

पढ़ कर शोभा की आँखों में आँसू बहने लगी। वह रजनी को ले कर आग के सामने खड़ी हो गयी और, प्रतिज्ञा की—"बाप के समान पुत्र को भी योद्धा बनाऊँगी और मातृभूमि के लिए अर्पण कर दूँगी।"

रणभेरी ज़ोर से बजने लगी। काहल ध्वनि आकाश में गूँज उठी। कैलासगिरि पर शिवजी ध्यान से जाग उठे। चीनी आक्रमण कारियों की तरफ अपना फालनेत्र खोल कर अभी देखने वाले हैं।

मैं भी एक दिन महाराजा बना था

एम. नमिराज

जी हाँ, मैं एक दिन महाराजा बना था। सच-मानिए, थोड़ी देर के लिए मैं महाराजा ही बना था।

उन दिनों मैं पैसे कमाने की चिन्ता में था। पैसे में कितना आकर्षण होता है, यह तो आप भी समझते ही हैं। पैसा सब को कितना प्यारा है — पैसे का नाम सुनते ही ज़िन्दा लोगों के तो क्या, मरे मुर्दों के भी कान खड़े हो जाते हैं। पैसा रूपी भगवान् ही सब का भाग्य-विधाता है। पैसे के बिना राजाधिराजा भी कंगाल है — भिखारी है। पैसा पा कर भिखारी भी छत्रपति बन जाता है। उस की कृपा-दृष्टि पाने के लिए लोग क्या क्या त्याग नहीं करते, कैसे-कैसे कष्ट नहीं सहते कौन-कौन से स्वांग धारण नहीं करते। पैसे के लिए बाप बेटे को अपना बेटा नहीं मानता. और बेटा बाप को अपना बाप नहीं मानता। पैसे की बलि वेदी पर भाई अपने ही भाई का बलिदान करने में संकोच नहीं करता। उस के बिना जीवन में कोई रस ही नहीं रहता — जीवन निरुत्साह लगता है। सारे संसार पर पैसे का ही आधिपत्य है और छोटे-बड़े सभी लोग पैसा-पैसा करते हुए उसी के स्तुति-पाठ में लगे हुए हैं। यहाँ तक कि बड़े-बड़े साधु सन्यासी भी पैसे की मोहिनी से नहीं बच सकते।

एक बार एक बड़े साधु महात्मा को रेल की फस्ट क्लास में देख कर एक महाशय ने पूछ ही लिया कि "बाबाजी आप यहाँ" साधु महाराज ने झट जवाब दिया कि "हाँ, बच्चा! भक्तों को खुश करने के लिए मुझे फस्ट क्लास में यात्रा करनी पड़ती है। मेरा थर्ड क्लास में सफर करना उन लीगों को इष्ट नहीं।" बाद में पता चला कि उन साधु महाराज की घर-गृहस्थी भी है, बालबच्चे भी हैं और वे बड़े वैभव से ज़िन्दगी बसर करते हैं।

अखबारों में पढ़ने को मिला कि बम्बई में एक भिखारी की झोली में दस हजार रुपये मिले। कहने का मतलब यह है कि मनुष्य के लिए पैसा कमाना ज़रूरी है। पैसा कमाने के कई तरीके होते हैं। जो जितने तरीकों में निपुण होगा वह उतना ही अधिक कमा सकता है।

हाँ, तो मैं कहा रहा था कि उन दिनों मैं पैसा कमाने की चिन्ता में था। लेकिन तब मैं ग्यारह-बारह का बालक ही था। एक आश्रम में रह कर विद्याध्ययन कर रहा था। पास में पैसे नहीं रहते थे। आश्रम के नियमातुसार पैसा पास में रखना अपराध था। घर से जो खर्चा आता उसे गुरुजी के पास जमा करना पड़ता था। जरूरत पड़ने पर हिसाब पेश करने के बाद ही गुरुजी से कुछ मिल सकता था। यद्यपि गुरुजी घर बड़ा लंबा-चौड़ा बिल भेजते थे पर जब हम पैसे माँगते तो फिजूल खर्च मत करो कह कर अकसर टाल देते थे। गुरुजी के सामने तर्क करने का किसी का साहस नहीं था। वे अनुशासन पर बहुत ज़ोर देते थे। उन का उड़ा सदा उन के पास बना रहता था। मामूली-सी बात पर दो-चार उड़े बरसा देना उन के लिए बहुत सहज था। बच्चों की जरूरतें तो अक्सर पैसे से हीं पूरीं होती हैं। इस लिए हम विद्यार्थी गुरुजी से पैसे पाने के लिए खूब बहाने बाजियाँ किया करते थे।

उस रोज मैं धोती जोड़ा खरीदने के लिए गुरुजी से पाँच रुपये लेकर बाज़ार गया। चौक में एक आदमी को कुछ चीजें नीलाम करते देख कर तमाशा देखने के लिए मैं भी वहाँ खड़ा हो गया। पहले उस ने एक घड़ी उठाई। उस की बोली दो रुपये से आगे नहीं बड़ी तो उस ने बोली बोलने वाले को आठ आने देकर घड़ी रखली। दूसरी बार उस ने एक चाकू उठाया चाकू की बोली वाले को भी चार आने मिल गये।

मुझे इस तमाशे में बड़ा मजा आने लगा। मैं सोचने लगा कि यह नीलाम वाला कोई दयालू दानी-महात्मा है तभी तो लोगों को पैसे बाँटता है। मैं भी इस खेल में हिस्सा लूँ तो अनायास ही कुछ कमा लूँगा। फिर तो एक-एक पैसे के लिए गुरुजी के सामने जाना नहीं पड़ेगा। मेरे भोले मन को यह ज्ञात नहीं हुआ कि यहाँ परदे के पीछे शिकार खेला जा रहा है, भोले-भाले लोगों को फँसा कर लूटने के लिए दलालों का जाल बिछाया गया है ये पैसे तो सिर्फ प्रलोभन के दाने हैं जो फेंके जा रहे हैं। मैं मन के लड्डू खाने में तल्लीन हो गया।

अब की नीलाम वाले ने एक बड़ा साफ (टर्बन) उठाया, जिस की चमक-धमक आँखों को चौंधिया दे रही थी और कहने लगा। "सज्जनो! इधर देखिए; यह असली बनारसी साफा है—इसे बड़े-बड़े राजा-महाराजा बान्धते हैं। किसी भी दूकान से खरीदेंगे तो आप को पच्चीस रुपये से कम में नहीं

मिलेगा। अपना भाग्य परखिये। शायद आप को सस्ते में ही मिल जाय। आप एक रुपये से बोली लगा सकते हैं।

एक बोला एक रुपया, दूसरा बोला दो, तीसरा—तीन। चौथा—चार। पाँचवा बोला साढ़े चार रुपये। इतने में मेरे दिलने कहा कि अब अवसर चूकना ठीक नहीं माल बहुत ज्यादा का है। नीलाम वाला कम से कम एक रुपया देही देगा। फिर तो कहना ही क्या पौ बारह हो जाएँगे। बोल ही पड़ा पाँच रुपये। सब की नज़रें एक साथ मेरी तरफ घूमी—सब की सब चकित। शायद वे आँखें सोच रही थीं यह उल्लू कहाँ से आ फँसा। नीलाम वाले को शायद मेरी बोली पर विश्वास नहीं आया—वह मेरे पास आ कर पूछने लगा कि "ए बच्चे तेरे पास रुपये भी हैं कि बोली बोलने लगा? मैं ने बड़े तीस-मार खाँ के समान बड़े ठाट से जेब से रुपये निकाल कर दिखा दिये। एकाएक दर्शक-ग्राहकों में निश्शब्दता छा गयी। नीलाम वाला कुछ देर तक चिल्लाता रहा—"बढ़िया माल सस्ते में जा रहा है पाँच रुपये एक……? पाँच रुपये दो……? लेकिन सभी लोग चुप्पी साधे खड़े थे जैसे कि उन के मुँह पर ताले पड़ गये हों।

मेरे मन में उतावली बढ़ रही थी कि कुछ पैसे मिल जाते तो मैं तुरन्त चल देता। गुरु जी का डर था, देर हुई जा रही थी। मैं अन्दर ही अन्दर छट-पटा रहा था। इतने में नीलाम वाला पाँच रुपये..... एक ?……दो…… ? पाँच रुपये तीन कहता हुआ मेरे पास आया। साफा मेरे हाथ पर रख कर रुपये उठा कर ले गया। दर्शक मुस्किराये, बच्चे तालियाँ पीटने लगे। लेकिन मैं पत्थर के समान स्तब्ध खड़ा रह गया।

एक ने मेहरबानी की कि मेरे हाथ से साफा ले कर मेरे सिर पर बाँध दिया। दूसरा चिल्ला उठा वाह। "क्या कहने! पूरे रामपुर के महाराजा लगते हो।" तीसरा बोला: "देखिए तो— महाराजा की कितनी बड़ी-बड़ी मूंछें हैं?" अनजान में ही मेरा हाथ मूछों पर पड़ा। वहाँ मूछें थीं ही कहाँ? लोग एक दम खिलखिला पड़े।

तभी मुझे वास्तविकता का बोध हुआ कि मैं धोखा खा गया। गुरुजी का डंडा आंखों के सामने झूलने लगा। पाँव कांप रहे थे। शरीर से पसीना छूट गया। धोती के बदले साफा ले कर गुरुजी के सामने कैसे जाऊँगा मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं ने नीलाम वाले से दया की भीख माँगी—गिडगिडाया कि वह साफा ले कर रुपये लौटा दे चाहे तो कुछ पैसे भी ले ले। पर उस भले मानस को मुझ पर तरस न आया। "मैं धन्धा करता हूँ कोई भाड़ नहीं झोंकता? किस ने कहा था तुझ से कि तू बोली बोला चल रास्ता नाप। यहाँ से कह कर भगा दिया।

मैं अपना-सा मुँह ले कर साफा भगल में दबाये सामने की कपड़े की दूकान पर गया और दूकान के मालिक को आप बीती सुन कर प्रार्थना की कि वे वह साफा रख कर मुझे एक धोती जोड़ा दे दें। सौभाग्य से सेठ जी हमारे आश्रम के चेरमेन थे।

मुझे दिलासा देते हुए सेठ जी ने कहा: "बच्चे ज़रा बैठ जाओ, घबराओ नहीं। तुम को धोती जोड़ा मिल जाएगा। उसी समय उन्हों ने अपने नौकर को बुला कर कहा कि "चौक जा कर ज़रा गिरधारी को बुला लाना तो।" गिरधारी सेठ जी के पास मुझे और साफे को देख कर सहम गया। सेठ जी ने गिरधारी से कहा कि "यह तुम अपना साफा उठा लाओ और बच्चे के पांच रुपये इधर लाओ।" गिरधारी गिड़गिड़ाया कि मालिक मैं भी तो पेट केलि धंधा करता हूँ। कुछ तो मिलना चाहिए सेठ जी ने साफ कह दिया—"इस मामले में कुछ भी नहीं मिलेगा, यह हमारे आश्रम का बच्चा है, इस के साथ तुम दो रुपये के माल को पाँच में नही बेच सकते। रुपये इधर लाओ और जा कर अपना धंधा देखो। गिरधारी का धंधा सेठ जी की मदद से ही चलता था। इसलिए रुपये वापस करने के सिवा उस के सामने दूसरा चारा नहीं था।

मुझे धोती जोड़ा मिला साथ ही यह हिदाम तभी मिली कि बाजरों में सभी प्रकार के धंधे चलते हैं संभल कर चलना चाहिए। अपनी सफलता पर मुझे एक बड़े साम्राज्य के महाराजा की खुशी के समान ही खुशी हो रही थी।

इस रहस्य को आज तक मैं ने किसी के आगे नहीं खोला है किन्तु जब कभी किसी नीलाम वाले की आवाज़ सुनता हूँ तो नज़रें उधर नहीं उठती, अनायास ही कदम जल्दी-जल्दी उठने लगते हैं।

प्रतिकार!

एन. कृष्णनकुट्टि B. Sc., (2nd. year)

सुलेखा रामू की इकलौती बेटी है। रामू एक फ़ाक्टरी में मज़दूरी करता था। उस का वेतन बहुत कम और घर में खाने वाले मुँह बहुत। फिर भी उस ने सुलेखा को किसी न किसी तरह एस. एस. एल. सी. पास कराया। यह कहने की जरूरत नहीं कि सुलेखा के ज़रिये उसने बहुत प्रतीक्षाएँ यथार्थ होने की आशा रखी थी। सुलेखा होशियार लड़की थी और सब से आश्चर्य की बात यह कि वह इतनी सुन्दरी है कि परियाँ भी उसे देख कर लज्जित हो जाएँ। उस की लम्बी-चौड़ी आँखों में माता-पिता स्नेह और भोलापन देखते हैं, उन की अधरों से निकलती मुस्कान में नौजवान एक नशा और उन्मत्तता पाते हैं और उस की चाल-चलन पर दूसरी औरतें उस पर ईर्ष्यालू होती हैं। उस की मिज़ाल अच्छी थी और स्कूल छोड़ते समय उस की उम्र केवल सोलह वर्ष की थी। फिर भी विवेकी है और वह दुनिया को पढ़ भी सकती है। अभी दो वर्ष हो गये वह नौकरी के लिए दरवाजे पर दरवाजे घड़घड़ाती रहती है, लेकिन लोगों की मुट्ठी को गरम करने के लिए रुपये न होने के कारण कुछ न निकला। परीक्षा में तो उस का नम्बर पहला आया लेकिन कॉलेज में भर्ती होने की बात सोचते ही उस का दिल बैठ जाता है। उच्च-शिक्षा उस की पहुँच के बाहर की बात है।

२

बूढ़ा हो जाने के कारण अभी हाल में रामू को नौकरी छोड़ना पड़ा। क्या, पच्चीस नारियल के पेड़ों से जो आमदनी थी उस पर उस घर का गुज़ारा होता है। दुर्भाग्य से सुलेखा की माँ को ज्वर आ गया। डाक्टर को बुलाने के लिए रुपया कहाँ। इस तरह दस-पाँच दिन गुज़र गये। लेकिग सुलेखा की माँ का ज्वर न उतरा।

शेखर उसी गाँव के ज़मीन्दार है और कहा तो यह जाता है कि ऐसी लड़कियाँ वहाँ बहुत कम है जो उस की जाल में किसी न किसी तरह न फंसी हो न कलंकित हुई हो। इस कारण से सारे लोग उसे एक शैतान समझते थे। लेकिन उन की करतूत के प्रति ऊँगली उठाने की हिम्मत किसी बाप की नहीं हुई। उसने सुलेखा के सौन्दर्य के बारे में पहले हीं सुना था और अब 'ऐन मौका' मिल गया यह समझ कर रामू के घर आ गये। उन्हों ने अपनी बड़ी सहानुभूति से रोगी की खबर ली और दवा-दारु के लिए पैसा खर्ज देने की बात कही। यह भी कहा कि मैं ने ऐसे बहुत से लोगों की सहायता की है। यह सुनते रामू की शंका और बढ़ गयी और वह असमंजस में पड़ गया। सुलेखा यह सुनतेही आपे से बाहर हो गयी और उस ने शेखर से बाहर निकलने को कहा और उस को भली-बुरी बातें कहने लगी। शेखर ने इस बात को अपना अपमान समझ लिया और बिगड़ कर बोले :— "सुलेखा, यह बात, अच्छी नहीं। इस की मज़ा तुम्हें चखाये बिना मैं न रहूँगा।" सुलेखा लाल आँखों से चलते शेखर को घूर कर देखती रह गयी।

३

प्रदीप कुमार एक 'टाईल' फाक्टरी का मानैजर हैं और बड़े रहम दिल भी। वह भी बचपन में बड़ा गरीब लड़का था। उन्हों ने आखिर सुलेखा की प्रार्थना को सुन ली और उसे एक क्लर्क की नौकरी दी। सुलेखा भी इस बात पर प्रसन्न थी कि यद्यपि माँ चल बसी, तो भी अपनी बहिनों और पिता को सुखी रख सकेगी।

४

अभी सुलेखा की नियुक्ति होते करीब एक हफ्त हो गया होगा। शेखर ने यह बात सुन ली और वे निर्दयी तुरन्त मानैजर से मिलने निकले। उन्हों ने मानैजर से पहले सुलेखा को नौकरी से निकालने की प्रार्थना की। जब मानेजर ने बेकसूर सुलेखा को निकालने से साफ़ इनकार किया तो शेखर मानैजर को डाँटने लगे। उन्हों ने यह धमकी दी कि अगर तुम मेरी बात को न माने तो मैं अपनी सारी पूंजी वापस लूँगा। यह सुनते मानैजर का दिल बैठ गया। वे जानते थे कि, इस से कंपनी का क्षय होगा और अपनी नौकरी भी चली जाएगी। उन्हों ने शेखर की बात से 'हाँ' मिलाया।

दूसरे दिन सुलेखा अपने काम में मग्न थी। एकाएक मानैजर उस के कमरे में आ गये। सुलेखा ने उस का आदर किया। मानैजर ने उस के हाथ में एक पत्र दिया और कहा कि "इस संसार में सभी भले मानस नहीं होते, सुलेखा धनवान लोगों क्या करने में असमर्थ हैं?" यह कहते-कहते उन की आँखों में आँसू डबडबाये।

सुलेखा को सारी बातें मालूम हो गयीं। उस ने आँसू पोंछ कर उठ खड़ी हो गयी और बिना मानैजर से बिदा भी लेते, घर को चल पड़ी। गरीबों की ऐसी हीं हालत होती है।

साहित्य-समाज का दिग्दर्शक!

वि. सुब्रह्मण्यन

कौन है समाज का दिगदर्शक? सभी ज्ञानी लोगों की राय है कि साहित्य समाज का दिग्दर्शक मित्र और दार्शनिक हैं। हम समझ सकते हैं कि यह वीक्षण केवल एक ऐतिहासिक तथ्य है। अनादि काल से ही साहित्य का समाज पर तथा समाज का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ता आया है।

साहित्य व्यक्ति के विचारों कल्पनाओं और अनुभूतियों का लिपिवद्ध रूप है। साहित्य की दो मुख्य चीजों की जरूरत है। वे हैं—कल्पना और लौकिक ज्ञान। एक साहित्यकार को दुनिया से दूर रहना मुश्किल है। वे अपना उपादान समाज के व्यवहार और वातावरण आदि से चुनता है। फिर अपने काल्पनिक रंग देने से सच्चा साहित्य बन जाता है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य साहित्यिक अध्यक्ष के लिए उत्सुक रहता आया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और उपनिषद एक तरह के साहित्य है। उन पौराणिक ग्रन्थों के द्वारा ही हम उस प्राचीन काल की सामाजिक व्यवस्था, समझ सकते हैं। सच्चे साहित्य में इतना प्रभाव है जो मानव विचार को सुधारने वाली या ठीक रास्ते पर चलाने वाली अजीब शक्ति है। साहित्य का इतिहास पढ़ने पर यह तथ्य हम समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए कबीर और तुलसीदास के दोहे ले सकते हैं। कबीरदास मूर्तीपूजा की निंदा करते हुए कहते हैं—

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूँजू पहार।
ताते या चक्की भली, पीस खाय संसार॥"

इस तरह के दोहे समाज की विचार शक्ति का परिवर्तन करने योग्य है।

साहित्य की उन्नति के अनुसार समाज का भी समूल परिवर्तन होता है। उसी तरह साहित्यकारों की विचार धाराओं के अनुसार समाज पर उन का प्रभाव बढ़ता आया है। एक-एक साहित्य में मानव विचार को सुधारने वाली या ठीक रास्ते पर चलाने वाला आदर्श भरा रहना आवश्यक है। सच्चे साहित्य में समाज की प्रत्येक स्थिति के नग्न चित्र खींचे जाते हैं। साहित्यकार की दृष्टि जीवन की हर एक क्षेत्र में जा कर गुणदोषों को ठीक तरह उठा कर दिखाता है। यही है एक सच्चे साहित्यकार की क्षमता। समाज में दृष्टिगत होने वाली कुरीतियों अन्धश्रद्धा, रूढि प्रियता और मिथ्याभिमान की निंदा सच्चे साहित्यकारों की रचना में स्पष्ट रूप से मिलती है। समाज को हानि पहुँचाने वाले पात्रों के प्रति उन का व्यंग दिल में चुभने वाला होता है। इस तीखे व्यंग से पाठक संभल जाते हैं और बुराइयों से बचने का प्रयत्न करते हैं। अतः समाज साहित्यकार से प्रेरणा पाकर अपना सुधार करता रहता है।

संक्षेप में साहित्य पर मनुष्य की नैसर्गिक अभिरुचि है, इन दोनों का पारस्परिक संबंध चिरकालीन है। साहित्य और समाज हिलमिल कर रहती है। साहित्य का जीवन के सारे क्षेत्र में बड़ा प्रभाव है। कालिदास विलास वैभव के युग के कवि थे; भक्ति-काल में आध्यात्मिक साहित्य की उन्नति हुई; रीतिकाल शृंगारी रचनाओं का था। वीर गाथा काल के साहित्य राजाओं के बारे में लिखे गये।

हिन्दी साहित्य गगन में उत्कृष्ट कविगण निराला, मैथिली शरणगुप्त, सियाराम शरण गुप्त, द्विवेदी आदि है। उन की विजय का कारण क्या है? वे अच्छे और ऊँचे आदर्श सरल और सुन्दर भाषा में हमारे सामने रखते थे। उन साहित्यकारों की रचनाओं में युग का पूर्ण प्रतिरूप पड़ा हुआ है। वे समाज के लिए उपयुक्त रचना करना ही अपना परम धर्म मानते हैं।

वास्तव में समाज का दिग्दर्शक साहित्यकार ही है। भक्तिकालीन कवियों में तुलसीदास, बृन्द, मीराबाई, कबीर के समय से लेकर आधुनिक काल के समाज सुधारक कवि मैथिलिशरण गुप्त, 'प्रसाद' और उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द आदि उत्कृष्ट साहित्यकारों का आदर्श यही रहा है। साहित्य का एक ही लक्ष्य है—समाजसुधार।

समाज पर एक साहित्यकार का प्रभाव बहुत ऊँचा है। श्री सोहनलाल द्विवेदी जी कहते हैं—

"गूँजती है, नृपति की नहीं,
कवि की ही वाणी गम्भीर!"